मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं

अर्पण

कल्याणमूर्ति श्रीसद्गुरुदेवको
जिन्होंने इस पामर पर अपार उपकार किया है। जो स्वयं
मोक्षमार्ग में विचर रहे हैं और अपनी दिव्य श्रुतधारा
द्वारा भरतभूमि के जीवों को सततरूप से मोक्षमार्ग
दर्शा रहे हैं जिनकी पवित्र वाणी में मोक्षमार्ग के
मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का माहात्म्य
निरन्तर बरस रहा है और जिनकी परम कृपा से
यह ग्रन्थ तैयार हुआ है – ऐसे कल्याणमूर्ति
सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझानेवाले
कल्याणमूर्ति श्री सदगुरुदेव को यह
ग्रन्थ अत्यन्त भक्तिभाव से
अर्पण करता हूँ......

– दासानुदास रामजी

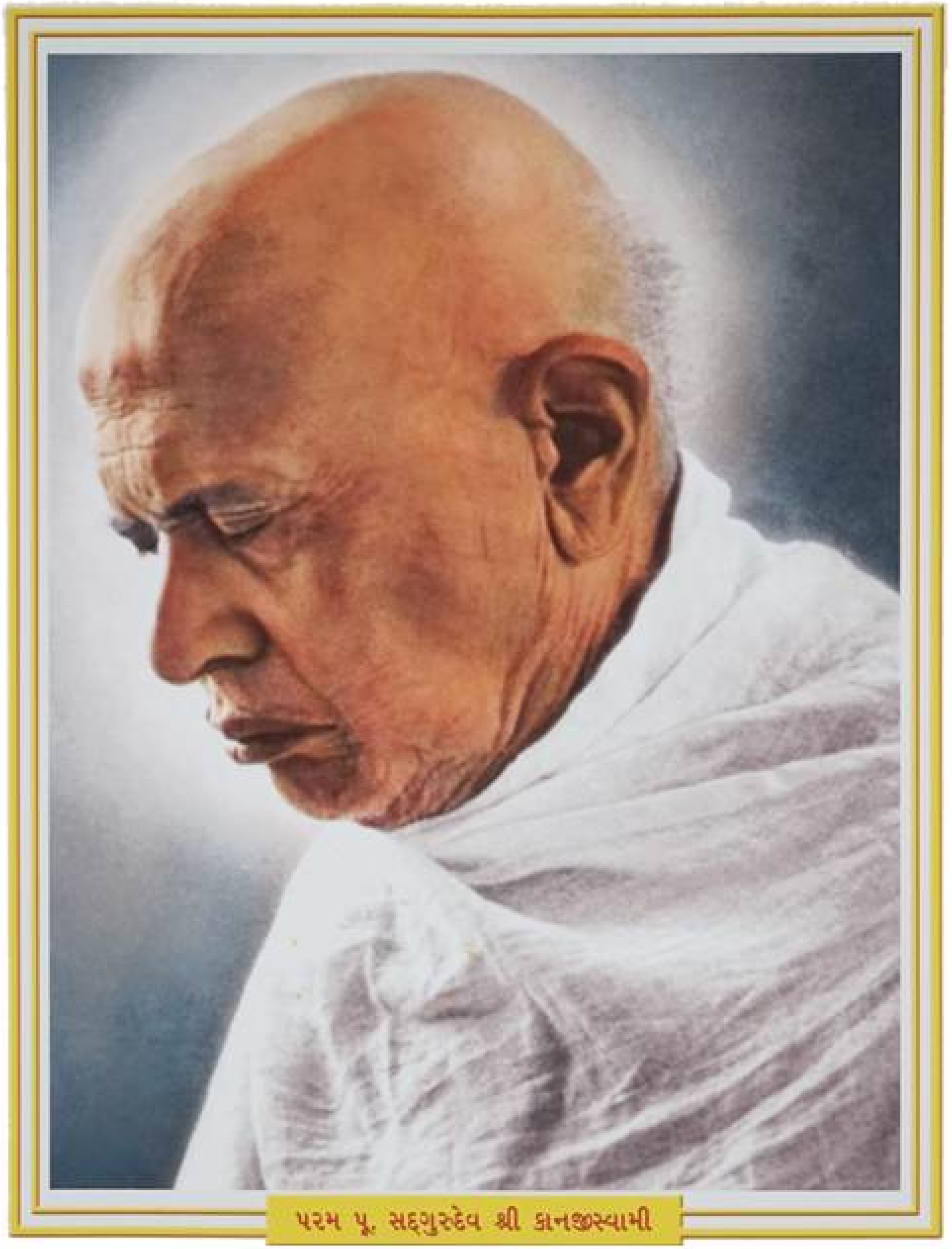

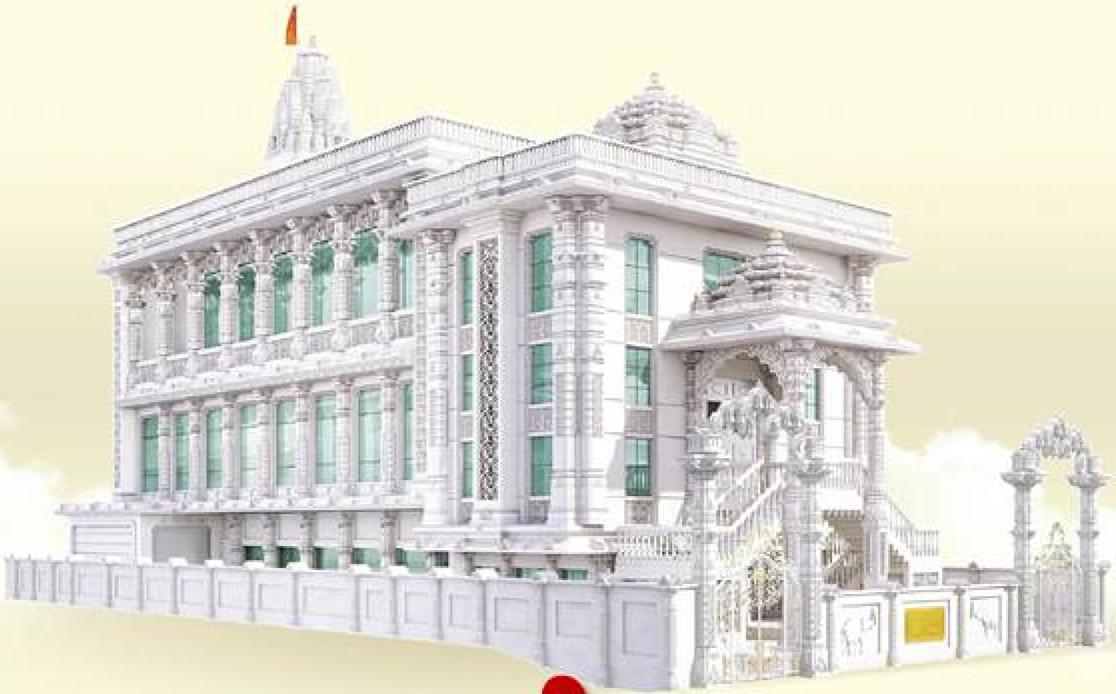

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र १

022 - 2663 1165 | +91 96195 04576 | parlajinmandir@gmail.com | www.parlajinmandir.org | /Parla.Jinmandir | /c/ParlaJinmandir

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्यस्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ - [जीवस्य] जीव के [औपशमिकक्षायिकौ] औपशमिक और क्षायिक [भावौ] भाव [च मिश्रः] और मिश्र तथा [औदयिक-पारिणामिकौ च] औदयिक और पारिणामिक, यह पाँच भाव [स्वतत्त्वम्] निजभाव हैं, अर्थात् यह जीव के अतिरिक्त दूसरे में नहीं होते ।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदाः यथाक्रमम् ॥ २ ॥

अर्थ - उपरोक्त पाँच भाव [यथाक्रमम्] क्रमशः [द्वि नव अष्टादश एकविंशति त्रिभेदाः] दो, नव, अट्ठारह, इक्कीस और तीन भेदवाले हैं।

अध्याय २, सूत्र २ - पाँच भाव के भेद

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा: यथाक्रमम् ॥ २ ॥

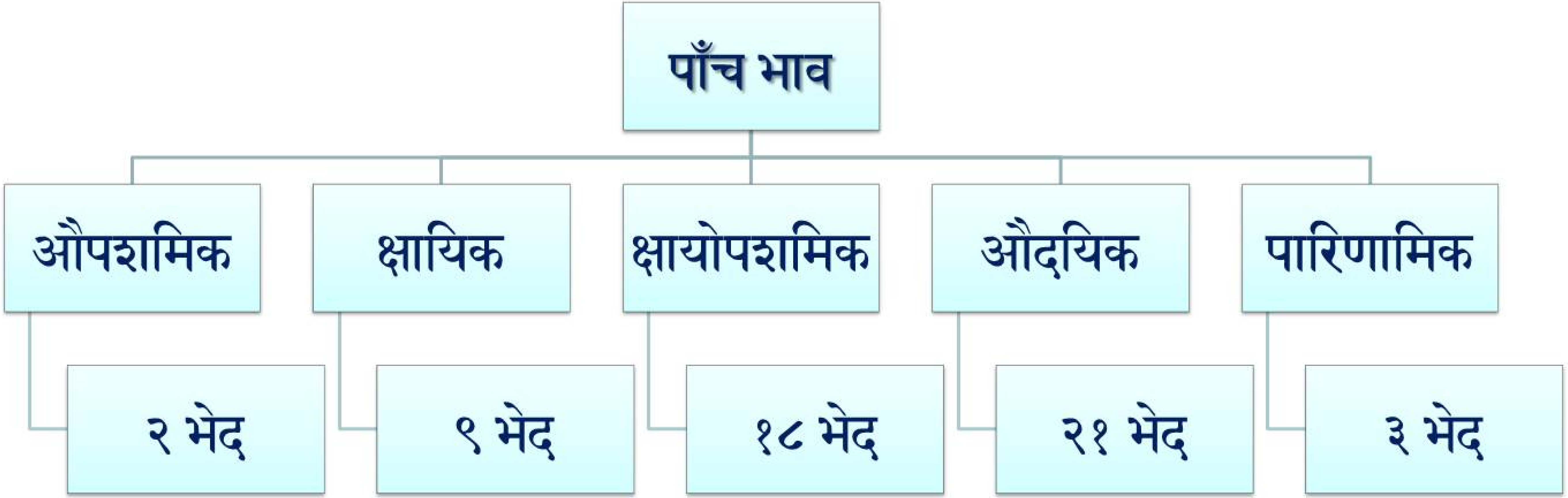

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

अर्थ - [सम्यक्त्व] औपशमिकसम्यक्त्व और [चारित्रे] औपशमिकचारित्र – इस प्रकार औपशमिकभाव के दो भेद हैं।

अध्याय २, सूत्र ३ - औपशमिकभाव के दो भेद

सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥

टीका – औपशमिकसम्यक्त्व का स्वरूप

(१) **औपशमिकसम्यक्त्व** –

- जब जीव के अपने सत्यपुरुषार्थ से औपशमिकसम्यक्त्व प्रगट होता है, तब मिथ्यात्वकर्म का और अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का स्वयं उपशम हो जाता है।
- अनादि मिथ्याद्रष्टि जीवों के तथा किसी सादि मिथ्याद्रष्टि के मिथ्यात्व एक और अनन्तानुबन्धी की चार, इस प्रकार कुल पाँच प्रकृतियाँ उपशमरूप होती हैं। शेष सादि मिथ्यादृष्टि के सात प्रकृतियों का उपशम होता है। जीव के इस भाव को औपशमिकसम्यक्त्व कहा जाता है।

(२) औपशमिकचारित्र –

- जीव जिस चारित्रभाव से उपशमश्रेणी के योग्य भाव प्रगट करता है, उसे औपशमिकचारित्र कहते हैं।
- उस समय मोहनीयकर्म की अप्रत्याख्यानावरणादि २१ प्रकृतियों का स्वयं उपशम हो जाता है।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥

अर्थ - [ज्ञानदर्शददानलाभभोगोपभोगवीर्याणि] केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकदान, क्षायिकलाभ, क्षायिकभोग, क्षायिकठपभोग, क्षायिकवीर्य तथा [च] च कहने पर, क्षायिकसम्यक्त्व और क्षायिकचारित्र – इस प्रकार क्षायिकभाव के नौ भेद हैं।

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च॥४॥

- क्षायिकभाव
  - क्षायिकसम्यक्त्व
  - क्षायिकचारित्र
  - केवलज्ञान
  - केवलदर्शन
  - क्षायिकदान
  - क्षायिकलाभ
  - क्षायिकभोग
  - क्षायिकउपभोग
  - क्षायिकवीर्य

अपने मूलस्वरूप की दृढ़तम प्रतीतिरूप पर्याय, क्षायिक सम्यक्त्व है; जब वह प्रगट होती है, तब मिथ्यात्वकी तीन और अनन्तानुबन्धी की चार, इस प्रकार कुल सात कर्म-प्रकृतियोंका स्वयं क्षय होता है।

अपने स्वरूप का पूर्ण चारित्र प्रगट होना, वह क्षायिक चारित्र है। उस समय मोहनीय कर्म की शेष २१ प्रकृतियों का क्षय होता है। इस प्रकार जब कर्म का स्वयं क्षय होता है, तब मात्र उपचार से यह कहा जाता है कि "जीव ने कर्म का क्षय किया है"; परमार्थ से तो जीव ने अपनी अवस्था में पुरुषार्थ किया है, जड़ प्रकृति में नहीं।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

- क्षायिकभाव
  - क्षायिकसम्यक्त्व
  - क्षायिकचारित्र
  - केवलज्ञान
  - केवलदर्शन
  - क्षायिकदान
  - क्षायिकलाभ
  - क्षायिकभोग
  - क्षायिकउपभोग
  - क्षायिकवीर्य

सम्पूर्ण ज्ञान का प्रगट होना, केवलज्ञान है; तब ज्ञानावरणीय कर्म की अवस्था क्षयरूप स्वयं होती है।

सम्पूर्ण दर्शन का प्रगट होना, केवलदर्शन है; इस समय दर्शनावरणीय कर्म का स्वयं क्षय होता है।

अध्याय २, सूत्र ४ - क्षायिकभाव के ९भेद

क्षायिकभाव

- क्षायिकसम्यक्त्व
- क्षायिकचारित्र
- केवलज्ञान
- केवलदर्शन
- क्षायिकदान
- क्षायिकलाभ
- क्षायिकभोग
- क्षायिकउपभोग
- क्षायिकवीर्य

अपने शुद्धस्वरूप का अपने को दान देना, वह निश्चय क्षायिकदान है और अनन्त जीवों को शुद्धस्वरूप की प्राप्ति में जो निमित्तपने की योग्यता, वह व्यवहार क्षायिक अभयदान है।

अपने शुद्धस्वरूप का अपने को लाभ होना, वह निश्चय क्षायिक लाभ है और निमित्तरूप से शरीर के बल को स्थिर रखने में कारणरूप सूक्ष्म नोकर्मरूप अनन्त पुद्गल परमाणुओं का प्रति समय सम्बन्ध होना, क्षायिकलाभ है।

अपने शुद्धस्वभाव का भोग, क्षायिकभोग है और निमित्तरूप से पुष्पवृष्टि आदिक विशेषों का प्रगट होना, क्षायिकभोग है।

अपने शुद्धस्वरूप का प्रति समय उपभोग होना, वह क्षायिक उपभोग है और निमित्तरूप से छत्र, चमर, सिंहासनादि विभूतियों का होना, क्षायिक उपभोग है।

अपने शुद्धात्मस्वरूप में उत्कृष्ट सामर्थ्यरूप से प्रवृत्ति का होना, वह क्षायिकवीर्य है।

जिनवाणी स्तुति

तीर्थंकरो जगतना जयवंत वर्तो,
ॐकारनाद् जिननो जयवंत वर्तो;
जिननां समोसरण सौ जयवंत वर्तो,
ने तीर्थ चार जगमां जयवंत वर्तो।

अहो! उपकार जिनवरनो, कुंदनो ध्वनि दिव्यनो;
जिन-कुंद-ध्वनि आप्या, अहो! ते गुरु कहाननो।
जिन-कुंद-ध्वनि आप्या, अहो! ते भगवती मातनो।